

[2009] 13 (अतिरिक्त) एस.सी.आर. 444

एम. एन. ओझा एवं अन्य.

बनाम

आलोक कुमार श्रीवास्तव और एक अन्य

(2009 की दांडिक अपील सं. 1582)

21 अगस्त, 2009

[आर.वी. रवीन्द्रन और बी. सुदर्शन रेड्डी, न्यायमूर्तिगण]

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973:

धारा 482-उच्च न्यायालय की शक्तियां-व्याख्या-एक प्रत्याभूतिदाता द्वारा बैंक अधिकारियों के खिलाफ शिकायत का वाद, जिसमें प्रत्याभूतिदाताओं द्वारा प्रतिभूति के रूप में दिए गए एफडीआर को भुनाने में उनकी ओर से आपराधिक विश्वासघात का आरोप लगाया गया-न्यायिक दंडाधिकारी ने बैंक अधिकारियों को समन जारी किया-कार्यवाही को रद्द करने की मांग करते हुए बैंक अधिकारियों द्वारा धारा 482 के तहत याचिका - उच्च न्यायालय द्वारा संक्षेप में खारिज कर दी गई- अभिनिर्धारित: शिकायत में किए गए कथन बैंक अधिकारियों द्वारा किसी अपराध के किए जाने का खुलासा नहीं करते हैं, जो केवल ऋण राशि वसूलने के लिए कदम उठा रहे थे -दंडाधिकारी ने अपना विवेक इस्तेमाल नहीं किया और आरोपों पर गुण-दोष के आधार पर विचार किए बिना मामले का संज्ञान ले लिया-उच्च न्यायालय ने धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार करके अपने कर्तव्य का परित्याग कर दिया। हालांकि मामले में न्यायालयी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उसके हस्तक्षेप की आवश्यकता थी - सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप के लिए एक स्पष्ट वाद बनाया गया है - उच्च न्यायालय के आदेश को अपास्त कर दिया गया - बैंक अधिकारियों के खिलाफ दांडिक कार्यवाही अभिखंडित कर दी गई - भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद 136।

उत्तरदाता सं. 1 और अन्य एक एकल-स्वामित्व प्रतिष्ठान के लिए प्रत्याभूतिदाता थे, जिसने उस बैंक से ऋण प्राप्त किया था जिसमें अपीलकर्ता कर्मचारी थे। जब उधारकर्ता ने ऋण राशि का पुनर्भुगतान करने में चूक की, तो बैंक ने उधारकर्ता को प्रत्याभूतिदाताओं के रूप में सूचित किया और बाद में उनके खिलाफ धोखाधड़ी और बंधक वस्तुओं के दुरुपयोग के लिए

प्राथमिकी दर्ज की और प्रत्याभूतिदाताओं द्वारा सुरक्षा के रूप में रखी गई सावधि जमा राशि के समायोजन के बाद शेष राशि की वसूली के लिए सार्वजनिक मांग वसूली अधिनियम के तहत कार्यवाही भी शुरू की। उत्तरदाता सं. 1 ने न्यायिक दंडाधिकारी के समक्ष बैंक अधिकारियों के खिलाफ शिकायत का वाद दायर किया जिसमें धारा 409, 422, 476 और 120- भारतीय दंड संहिता के तहत दंडनीय अपराधों का आरोप लगाया गया और कहा गया कि शाखा प्रबंधक ने उधारकर्ता के भाई के साथ साजिश में, जो बैंक का एक कर्मचारी भी था, खाते के संचालन की अनुमति दी और आपराधिक न्यास भंग किया। न्यायिक दंडाधिकारी ने परिवाद का संज्ञान लिया और बैंक अधिकारियों के विरुद्ध अजमानतीय वारंट जारी करने का निर्देश दिया। बैंक अधिकारियों द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत दायर आवेदन को संक्षिप्त प्रक्रिया में खारिज कर दिए जाने के बाद उन्होंने अपील दायर की।

अपील को स्वीकार करते हुए, न्यायालय का

अभिनिर्धारित: 1. 1. सामान्यतः, उच्च न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए, प्रारंभिक चरण में/जब अन्वेषण/जाँच लंबित हो, दांडिक कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं करेगा। लेकिन, साथ ही उच्च न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार नहीं कर सकता है यदि न्याय के हित में ऐसा आवश्यक हो, जहां प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हों, जिनके आधार पर कोई भी निष्पक्ष और सूचित पर्यवेक्षक कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधार के अस्तित्व के बारे में कभी भी उचित और न्यायसंगत निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता है। ऐसे मामलों में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार करने से भी अन्याय हो सकता है, खासकर उन मामलों में जहां शिकायतकर्ता दबाव डालने और शिकायत में आरोपी के रूप में खड़े व्यक्तियों को परेशान करने के उद्देश्य से आपराधिक कानून को लागू करता है। [कंडिका 15] [454- सी-जी]

कर्नाटक राज्य बनाम एल. मुनिस्वामी (1977) 2 एससीसी 699 और कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय बनाम हरियाणा राज्य (1977) 4 एससीसी 451, पर अवलंबन किया गया।

1.2. वर्तमान वाद ऐसा है जिसमें शिकायत में किए गए कथनों और आरोपों से अपीलकर्ताओं या उनमें से किसी एक द्वारा कोई अपराध किए जाने का पता नहीं चलता है। वे केवल उधारकर्ता और प्रत्याभूतिदाताओं से बैंक को देय राशि वसूलने के अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे। घटनाओं का क्रम निस्संदेह यह दर्शाता है कि दांडिक कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण

तरीके से अपीलकर्ताओं से बदला लेने के गुप्त उद्देश्य और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उन्हें परेशान करने के उद्देश्य से शुरू की गई है। इसका स्पष्ट उद्देश्य लोक सेवकों को उनके कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोकना था। एसडीजेएम ने मामले का संज्ञान लिया और उत्तरदाता-शिकायतकर्ता द्वारा दायर शिकायत में लगाए गए आरोपों और कथनों की जांच किए बिना ही अपीलकर्ताओं के खिलाफ अजमानतीय वारंट जारी कर दिए। एसडीजेएम के समक्ष यह दिखाने के लिए सामग्री थी कि शिकायतकर्ता ने स्वयं गारंटी के समझौते और अन्य दस्तावेजों को निष्पादित करने के बारे में स्वीकार किया था, जिसमें मुख्य उधारकर्ता द्वारा बैंक को उक्त राशि का भुगतान करने में विफल रहने की स्थिति में बिना शर्त ऋण राशि का भुगतान करने की सहमति दी गई थी और यह शिकायत केवल अपीलकर्ता सं. 1 द्वारा शिकायतकर्ता और उधारकर्ता और अन्य प्रत्याभूतिदाताओं के खिलाफ उसी लेनदेन के संबंध में धोखाधड़ी और गबन के लिए दर्ज की गई प्राथमिकी का पलटवार था। यह दंडाधिकारी द्वारा विचार-विमर्श न किए जाने का स्पष्ट वाद है। उन्होंने शिकायत की सामग्री की भी जांच नहीं की, अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री दस्तावेजों की तो बात ही छोड़ दें। [कंडिका 13, 14 और 16] [455- ए- ई; 452- एफ- एच; 453- ए- सी; 453- एच; 454- ए]

पेप्सी फूड्स लिमिटेड एवं अन्य बनाम विशेष न्यायिक दंडाधिकारी एवं अन्य (1998)
5 एससीसी 749, पर अवलंबन किया गया।

1.3. उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं द्वारा धारा 482 के अंतर्गत दायर याचिका का निपटारा करने में स्पष्ट त्रुटि की, यहाँ तक कि उन मूल तथ्यों पर भी ध्यान दिए बिना जो उसके समक्ष विचारार्थ रखे गए थे। उच्च न्यायालय ने धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार करके अपने कर्तव्य का लगभग परित्याग कर दिया, जबकि प्रस्तुत मामले में अधीनस्थ न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उसके हस्तक्षेप की आवश्यकता थी। न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता का स्पष्ट वाद बनता है। इसलिए, आक्षेपित आदेश उच्च न्यायालय के आदेश को रद्द किया जाता है और शिकायत वाद संख्या 916 (सी) वर्ष 2003 से उत्पन्न दांडिक कार्यवाही को रद्द किया जाता है। [कंडिका 15 और 17] [454-बी-ई; 455-जी]

निर्णयज विधि संदर्भ:

(1977) 2 एससीसी 699	पर अवलंबन किया गया	कंडिका 15
(1977) 4 एससीसी 451	पर अवलंबन किया गया	कंडिका 15

(1998) 5 एससीसी 749

पर अवलंबन किया गया

कंडिका 14

दांडिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: दांडिक अपील सं. 1582/2009

दांडिक विविध सं. 18838/2004 में पटना उच्च न्यायालय के दिनांक 03.01.2007 के निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ताओं की ओर से ध्रुव मेहता, यशराज सिंह देवड़ा, मोहित अब्राहम, के एल मेहता एवं कंपनी।

उत्तरदाता की ओर से गोपाल सिंह, चंदन कुमार।

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति बी. सुदर्शन रेड्डी द्वारा सुनाया गया।

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. विशेष अनुमति प्रदान करके यह अपील अपीलकर्ता द्वारा निर्देशित की जाती है, जिसमें दांडिक विविध सं. 18838/2004 में पटना उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 3.1.2007 के निर्णय और आदेश को चुनौती दी गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने उप-मंडल न्यायिक दंडाधिकारी, पटना की फाइल पर लंबित शिकायत वाद संख्या 916 (सी)/2003 से उत्पन्न दांडिक कार्यवाही को रद्द करने की याचिका को खारिज कर दिया था।

3. मामले का संक्षिप्त तथ्यात्मक विवरण इस प्रकार है:

21 दिसंबर, 1998 को पंजाब नेशनल बैंक, पटना सिटी ने जतिंदर मोहन नामक व्यक्ति की स्वामित्व वाली मेसर्स निर्मला अलंकार हाउस, पटना सिटी को 5 लाख रुपये का ऋण स्वीकृत किया। उक्त जतिंदर मोहन ने उत्तरदाता-शिकायतकर्ता सहित पाँच प्रत्याभूतिदाताओं की प्रतिभूति प्रदान की, जिन्होंने बदले में 50,000 रुपये मूल्य की सावधि जमा रसीदें (एफडीआर) जमा कीं, जिनमें से प्रत्येक पर विधिवत हस्ताक्षर थे, जिससे बैंक को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि यदि उधारकर्ता द्वारा समय पर भुगतान नहीं किया जाता है, तो वह एफडीआर की राशि ब्याज सहित हड़प लेगा। उनमें से प्रत्येक ने संयुक्त रूप से और अलग-अलग गारंटी समझौते पर हस्ताक्षर भी किए थे, जिसमें लिखित रूप में मांग के बाद बैंक को सभी मूलधन, ब्याज, लागत, शुल्क और व्यय का भुगतान करने की गारंटी दी गई थी, जो किसी भी समय उधारकर्ता से बैंक को देय हो सकते हैं, उक्त सीमाओं के संबंध में खोले गए खातों पर भुगतान की तारीख तक और उधारकर्ता द्वारा ऐसे भुगतान में अस्थायी या अन्यथा चूक, विफलता या चूक के

कारण बैंक को हुई सभी हानि या क्षति, लागत, शुल्क और व्यय भी। प्रत्याभूतिदाता आगे इस बात पर सहमत हुए कि बैंक अपने पास ग्रहणाधिकार, दृष्टिबंधक, गिरवी या बंधक के तहत रखी गई किसी भी प्रतिभूति को लागू किए, बेचे या वसूले बिना गारंटी को लागू कर सकता है, भले ही उक्त खाते में उधारकर्ता द्वारा दिए गए कोई भी बिल या अन्य लिखत वसूली और बकाया के लिए प्रचलन में हों।

4. मार्च 2000 में बैंक को यह अहसास हुआ कि ऋण खाता पूरी तरह से अनियमित हो गया है, क्योंकि उधारकर्ता समझौते के अनुसार कोई भी राशि नहीं चुका रहा है। 26.3.2002 को प्रथम अपीलकर्ता-वरिष्ठ प्रबंधक ने यह अहसास किया कि बैंक ऋण की वसूली असंभव हो गई है, इसलिए उन्होंने उधारकर्ता के बकाये के लिए जमानतदारों द्वारा सुरक्षा के तौर पर दिए गए एफडीआर में से कुछ राशि समायोजित कर ली। बैंक ने 27.12.2002 के नोटिस के जरिए उधारकर्ता और जमानतदारों को सूचित किया कि ऋण खाते को नियमित किया जाना चाहिए, जिस पर कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली। इसके बाद बैंक ने संबंधित पुलिस थाने में उधारकर्ता और जमानतदारों के खिलाफ धोखाधड़ी और गिरवी रखी गई वस्तुओं के दुरुपयोग के आरोप में एक प्राथमिकी दर्ज कराई, जिसमें उत्तरदाता भी शामिल था। उक्त मामले की सुनवाई लंबित है।

5. प्रत्याभूतिदाताओं ने उप महाप्रबंधक, सतर्कता प्रकोष्ठ, पीएनबी, नई दिल्ली, आंचलिक प्रबंधक, पीएनबी, पटना और क्षेत्रीय प्रबंधक पीएनबी, (हरिद्वार) को शून्य तारीख का कानूनी नोटिस भेजा, जिसमें आरोप लगाया गया कि अपीलकर्ता संख्या 1 के कदाचार के कारण उन्हें गंभीर असुविधा हुई। यह भी आरोप लगाया गया कि ऋणदाता के खिलाफ कार्यवाही से पहले ऋण राशि की वसूली के लिए और ऋण की वसूली के लिए जमानत के रूप में उनके द्वारा पेश की गई एफडीआर को भुनाने के लिए कोई उचित कदम नहीं उठाया गया।

6. उक्त कानूनी नोटिस में आगे आरोप लगाया गया कि प्रकाश मोहन नामक व्यक्ति ने पटना सिटी शाखा में सहायक के रूप में काम करते समय अपने भाई जितेंद्र मोहन के नाम पर 5 लाख रुपये की नकदी ऋण सुविधा का प्रबंधन किया था और प्रकाश तथा अपीलकर्ता संख्या 1 दोनों ने बैंक को धोखा देने और "निर्दोष प्रत्याभूतिदाताओं पर दोष डालने" के उद्देश्य से एक-दूसरे के साथ मिलीभगत की थी।

7. तत्पश्चात, परिवादी आलोक कुमार श्रीवास्तव, जो जमानतदारों में से एक थे, ने बैंक द्वारा सावधि जमा राशि हड़पने की कार्रवाई से व्यथित होकर, पटना नगर के एसडीजेएम के न्यायालय में धारा 409, 422, 426 और 120बी भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत परिवाद सं.

916/2003 दायर किया, जिसमें अन्य तीन जमानतदारों को गवाह के रूप में प्रस्तुत किया गया। विद्वान एसडीजेएम, पटना नगर ने अपने आदेश दिनांक 22.3.2004 द्वारा मामले का संज्ञान लिया; और परिवाद में अभियुक्त के रूप में नामित सभी अपीलकर्ताओं के विरुद्ध अजमानतीय गिरफ्तारी वारंट जारी करने का निर्देश दिया।

8. इस बीच, बैंक ने सावधि जमा राशि के समायोजन के बाद उधारकर्ता द्वारा देय शेष राशि की वसूली के लिए सार्वजनिक मांग वसूली अधिनियम के तहत कार्यवाही शुरू की।

9. अपीलकर्ताओं ने, एसडीजेएम, पटना सिटी, पटना के आदेश से व्यथित होकर, उत्तरदाता-शिकायतकर्ता द्वारा उनके विरुद्ध शुरू की गई दंडिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए पटना उच्च न्यायालय में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत एक याचिका दायर की। उच्च न्यायालय ने बिना कोई कारण बताए, उक्त याचिका का निम्नलिखित तरीके से सरसरी तौर पर निपटारा कर दिया:

"अभिलेख में मौजूद सामग्री और शिकायत याचिका में बताए गए तथ्यों पर विचार करने के बाद, मुझे इस आवेदन में कोई योग्यता नहीं दिखती है और इसलिए आक्षेपित आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। तथ्यों की जांच की जानी चाहिए और मुकदमे के उचित चरण में विधिवत विचार किया जाना चाहिए।"

इसलिए यह अपील दायर की गई।

प्रस्तुत दलीलें:-

10. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता श्री ध्रुव मेहता ने कहा कि उच्च न्यायालय यह मूल्यांकन करने में विफल रहा कि शिकायत पूरी तरह से दुर्भावनापूर्ण इरादे से केवल अपीलकर्ताओं को परेशान करने के लिए दर्ज की गई है, जो केवल लोक सेवक के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे, जो कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं है। शिकायत में किए गए कथन अपनी प्रकृति में पूरी तरह से अनिश्चित हैं और कथित रूप से किए गए अपराधों का कोई भी तत्व अपीलकर्ताओं के खिलाफ नहीं बनता है। यह भी तर्क दिया गया कि विद्वान एसडीजेएम ने विवेक एवं विचार किए बिना और इस अदालत द्वारा एक से अधिक फैसलों में निर्धारित कानून के विपरीत समन आदेश पारित किया है। यह प्रस्तुत किया गया कि शिकायत बैंक द्वारा 20.2.2003 को उधारकर्ता और साथ ही प्रत्याभूतिदाता के

खिलाफ धोखाधड़ी और गिरवी रखे गए सामान के दुरुपयोग के लिए पहले से दर्ज की गई प्राथमिकी के जवाब में दायर की गई थी।

11. यद्यपि उत्तरदाता को 16.5.2007 को नोटिस दिया गया था, फिर भी वह न तो व्यक्तिगत रूप से और न ही अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थित हुआ।

12. उत्तरदाता-शिकायतकर्ता उन प्रत्याभूतिदाताओं में से एक है जिन्होंने उधारकर्ता द्वारा प्राप्त ऋण के पुनर्भुगतान की गारंटी दी थी। इसमें कोई विवाद नहीं है कि ऋण खाता पूरी तरह से अनियमित हो गया और बैंक के पास एफडीआर को उस पर अर्जित ब्याज सहित हड़पने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा था। शुरू की गई कार्रवाई अन्य प्रत्याभूतिदाताओं के साथ शिकायतकर्ता द्वारा निष्पादित दस्तावेजों के संदर्भ में थी। अभिलेख से स्पष्ट है कि बैंक ने 20.2.2003 को उधारकर्ता के साथ-साथ प्रत्याभूतिदाताओं के खिलाफ धोखाधड़ी और गिरवी रखे गए सामान के दुरुपयोग के लिए पुलिस में प्राथमिकी दर्ज कराई थी। पुलिस ने बैंक की ओर से प्रथम अपीलकर्ता द्वारा दर्ज की गई उक्त प्राथमिकी के आधार पर शिकायतकर्ता और अन्य के खिलाफ कार्रवाई शुरू की। यह तथ्य विशेष रूप से शिकायतकर्ता सहित प्रत्याभूतिदाताओं की ओर से जारी कानूनी नोटिस में स्वीकार किया गया है। बैंक की ओर से प्रथम अपीलकर्ता द्वारा दर्ज कराई गई प्राथमिकी के लगभग 10 महीने बाद शिकायतकर्ता द्वारा अपीलकर्ताओं के खिलाफ दायर की गई यह शिकायत, अपीलकर्ताओं को परेशान करने के लिए न्यायिक प्रक्रिया का स्पष्ट दुरुपयोग है। शिकायतकर्ता ने स्वयं अपनी शिकायत में स्वीकार किया है कि विचाराधीन खाता धीरे-धीरे अनियमित होता जा रहा था और प्रबंधक को गिरवी रखी गई वस्तुओं की बिक्री के लिए कदम उठाने चाहिए थे और बिक्री की राशि को ऋण राशि की वसूली के लिए विनियोजित करना चाहिए था। शिकायतकर्ता का कहना है कि प्रथम अपीलकर्ता को पहले गिरवी रखी गई वस्तुओं को विनियोजित करना चाहिए था और उसके बाद ही प्रत्याभूतिदाताओं से शेष राशि, यदि कोई हो, की वसूली के लिए कदम उठाए जा सकते थे। आरोप लगाया गया है कि शाखा प्रबंधक ने उधारकर्ता के भाई, जो कोई और नहीं बल्कि बैंक का एक कर्मचारी है, के साथ मिलकर साजिश रची और खाते को तब तक चालू रखा जब तक कि स्थिति "बद से बदतर" नहीं हो गई। उनके अनुसार, शाखा प्रबंधक ने उधारकर्ता के साथ साजिश रची और आपराधिक विश्वासघात किया। शिकायत में बार-बार यह दावा किया गया है कि सभी आरोपियों ने आपस में मिलकर धोखाधड़ी से बैंक की भारी धनराशि अपने फायदे के लिए इधर-उधर की है। हैरानी की बात यह है कि न तो कर्जदार और न ही उसके भाई, जिसके साथ बैंक अधिकारियों की मिलीभगत का आरोप है, को आरोपी बनाया गया है। शिकायतकर्ता

ने अपनी शिकायत में "धोखाधड़ी, मिलीभगत, षडयंत्र और धोखाधड़ी आदि" जैसे शब्दों का खुलकर इस्तेमाल किया है, लेकिन अपीलकर्ताओं के खिलाफ कोई ठोस आरोप नहीं लगाया है जिससे किसी अपराध का संकेत मिलता हो। शिकायत को सीधे तौर पर पढ़ने और उसमें लगाए गए आरोपों और कथनों को सच मानने पर, अपीलकर्ताओं द्वारा किसी भी तरह का अपराध किए जाने का पता नहीं चलता है। वे केवल कर्जदार से बैंक को देय राशि वसूलने के लिए कदम उठा रहे थे और इस प्रक्रिया में उन्होंने ऋण चुकाने के लिए जमानत के तौर पर प्रत्याभूतिदाताओं द्वारा पेश की गई एफडीआर को भुना लिया। यदि उन्होंने प्रत्याभूतिदाताओं द्वारा दी गई एफ.डी.आर. प्राप्त करने से पहले गिरवी रखी गई संपत्तियों के विरुद्ध कार्यवाही नहीं की, तो उन्होंने कौन सा अपराध किया है? धन का दुरुपयोग कहाँ हुआ? उन्होंने किसे धोखा दिया?

13. हमारे विचार से, शिकायतकर्ता द्वारा बैंक अधिकारियों को अनावश्यक रूप से परेशान करने तथा व्यक्तिगत प्रतिशोध लेने के लिए आपराधिक कानून का सहारा लिया गया है, ताकि बैंक की ओर से शिकायतकर्ता के विरुद्ध अपीलकर्ताओं द्वारा पहले से शुरू की गई कार्यवाही को आगे न बढ़ाने के लिए उन पर दबाव बनाया जा सके।

14. हमारी सुविचारित राय में, विद्वान एसडीजेएम ने उत्तरदाता-शिकायतकर्ता द्वारा दायर शिकायत में लगाए गए आरोपों और कथनों की जांच किए बिना ही अपीलकर्ताओं के खिलाफ आपराधिक कानून लागू कर दिया। विद्वान एसडीजेएम ने आरोपों के गुण-दोष पर विचार किए बिना ही मामले का संज्ञान ले लिया। यदि विद्वान एसडीजेएम ने शिकायत का ठीक से अध्ययन किया होता तो उन्हें पता चल जाता कि शिकायतकर्ता ने स्वयं उत्तरदाता-शिकायतकर्ता और अन्य के खिलाफ आपराधिक विश्वासघात और अन्य अपराधों के लिए प्राथमिकी दर्ज करने का उल्लेख किया था। यदि उन्होंने शिकायत का ठीक से अध्ययन किया होता, तो उन्होंने निश्चित रूप से शिकायतकर्ता से उक्त प्राथमिकी की प्रति प्रस्तुत करने के लिए कहा होता। उत्तरदाता-शिकायतकर्ता की ओर से अपीलकर्ताओं को जारी कानूनी नोटिस की एक प्रति शिकायत के साथ दायर की गई थी और विद्वान एसडीजेएम द्वारा पारित आदेश में इसका उल्लेख किया गया है। यदि विद्वान एसडीजेएम ने उक्त कानूनी नोटिस का अवलोकन किया होता, तो उन्हें पता चल जाता कि शिकायतकर्ता ने स्वयं गारंटी के समझौते और अन्य दस्तावेजों के निष्पादन के बारे में स्वीकार किया है, जिसमें मुख्य उधारकर्ता द्वारा बैंक को उक्त राशि का भुगतान करने में विफल रहने की स्थिति में बिना शर्त ऋण राशि का भुगतान करने की सहमति व्यक्त की गई है। यदि विद्वान एसडीजेएम ने तथ्यों और परिस्थितियों और घटनाओं के अनुक्रम और

साथ ही शिकायतकर्ता द्वारा स्वयं शिकायत के साथ दायर दस्तावेजों पर अपना दिमाग लगाया होता, तो निश्चित रूप से उन्होंने शिकायत को खारिज कर दिया होता। उन्हें पता चल गया होता कि शिकायत केवल उसी लेनदेन के संबंध में शिकायतकर्ता और अन्य के खिलाफ बैंक द्वारा दर्ज की गई प्राथमिकी का एक जवाबी हमला थी। इस न्यायालय ने *पेप्सी फूड्स लिमिटेड और अन्य बनाम विशेष न्यायिक दंडाधिकारी और अन्य* [(1998) 5 एससीसी 749] में माना:

"28. किसी आपराधिक मामले में अभियुक्त को समन करना एक गंभीर वाद है। आपराधिक कानून को स्वाभाविक रूप से लागू नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं है कि शिकायतकर्ता को आपराधिक कानून लागू करने के लिए शिकायत में अपने आरोपों के समर्थन में केवल दो गवाह ही पेश करने होंगे। अभियुक्त को समन करने वाले दंडाधिकारी के आदेश में यह प्रतिबिंबित होना चाहिए कि उन्होंने मामले के तथ्यों और उस पर लागू कानून का गहन अध्ययन किया है। उन्हें शिकायत में लगाए गए आरोपों की प्रकृति और उनके समर्थन में मौखिक एवं दस्तावेजी साक्ष्यों की जाँच करनी होगी और यह देखना होगा कि क्या यह शिकायतकर्ता द्वारा अभियुक्त पर आरोप सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। ऐसा नहीं है कि अभियुक्त को समन करने से पहले प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज करते समय दंडाधिकारी मूकदर्शक बना रहे। दंडाधिकारी को अभिलेख में प्रस्तुत साक्ष्यों की सावधानीपूर्वक जाँच करनी होगी और वह स्वयं भी शिकायतकर्ता और उसके गवाहों से आरोपों की सत्यता या अन्यथा का पता लगाने के लिए प्रश्न पूछ सकता है और फिर जाँच कर सकता है कि क्या प्रथम दृष्टया सभी या किसी अभियुक्त द्वारा कोई अपराध किया गया है।"

प्रस्तुत वाद विद्वान दंडाधिकारी द्वारा विवेक का प्रयोग न करने का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। विद्वान दंडाधिकारी ने शिकायत की विषय-वस्तु की भी जाँच नहीं की, अभिलेख में उपलब्ध महत्वपूर्ण दस्तावेजों की तो बात ही छोड़ दीजिए। अपीलकर्ताओं को समन जारी करने से पहले प्रारंभिक साक्ष्य दर्ज करते समय विद्वान दंडाधिकारी वास्तव में मूकदर्शक बने रहे।

15. उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ताओं द्वारा संहिता की धारा 482 के तहत दायर याचिका का निपटारा करने में स्पष्ट त्रुटि की, यहां तक कि उसके समक्ष विचारार्थ रखे गए मूल तथ्यों पर भी ध्यान दिए बिना। यह सच है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए न्यायालय आरोपों की सच्चाई या असत्यता की जांच नहीं कर

सकता और यदि कोई साक्ष्य अभिलेख में उपलब्ध है तो उसका मूल्यांकन नहीं कर सकता। आम तौर पर, उच्च न्यायालय प्रारंभिक चरण में/जब जांच/जांच लंबित हो तो दांडिक कार्यवाही में हस्तक्षेप नहीं करेगा। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप केवल वहीं हो सकता है जहां इस तरह के हस्तक्षेप के लिए एक स्पष्ट वाद बनता है। उच्च न्यायालय द्वारा प्रारंभिक चरण में भी बार-बार और अनावश्यक हस्तक्षेप करने से आपराधिक मामले में जांच की प्रगति में बाधा उत्पन्न हो सकती है लेकिन साथ ही, यदि न्याय के हित में ऐसा अपेक्षित हो, तो उच्च न्यायालय अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार नहीं कर सकता, जहाँ प्राथमिकी या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हों कि उनके आधार पर कोई भी निष्पक्ष और जानकार पर्यवेक्षक कार्यवाही के लिए पर्याप्त आधारों के अस्तित्व के बारे में न्यायोचित और उचित निष्कर्ष पर कभी नहीं पहुँच सकता। ऐसे मामलों में क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार करने से भी अन्याय हो सकता है, खासकर उन मामलों में जहाँ शिकायतकर्ता शिकायत में अभियुक्त बनाए गए व्यक्तियों पर दबाव डालने और उन्हें परेशान करने के उद्देश्य से आपराधिक कानून को लागू करता है। यह सर्वविदित है और इसे पुनः कहने की आवश्यकता नहीं है कि आपराधिक मामलों में उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति का संरक्षण एक हितकारी सार्वजनिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए है "अर्थात् किसी न्यायालयी कार्यवाही को उत्पीड़न या उत्पीड़न के हथियार में बदलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। यदि ऐसी शक्ति प्रदान नहीं की जाती है, तो यह अन्याय का कारण भी बन सकती है"। [देखें: *कर्नाटक राज्य बनाम एल. मुनिस्वामी* (1977) 2 एससीसी 699]। हम इस बात से अवगत हैं कि अंतर्निहित शक्तियां उच्च न्यायालय को "अपनी इच्छा या मनमानी के अनुसार कार्य करने का मनमाना क्षेत्राधिकार प्रदान नहीं करती हैं। इस वैधानिक शक्ति का प्रयोग सावधानी से, सतर्कता के साथ और अत्यंत दुर्लभ मामलों में ही किया जाना चाहिए।" [देखें: *कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय बनाम हरियाणा राज्य* (1977) 4 एससीसी 451]

16. यह एक ऐसा वाद है जहां शिकायत में किए गए कथन और आरोप अपीलकर्ताओं या उनमें से किसी एक द्वारा किसी अपराध के किए जाने का खुलासा नहीं करते हैं। वे केवल उधारकर्ता और प्रत्याभूतिदाताओं से बैंक को देय राशि वसूलने के लिए अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे। शिकायत स्पष्ट रूप से बैंक द्वारा पहले से शुरू की गई कार्यवाहियों के जवाब में दर्ज की गई है, जिसमें प्रथम अपीलकर्ता द्वारा शिकायतकर्ता और उधारकर्ता के खिलाफ धोखाधड़ी और गबन के अपराधों के लिए दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट भी शामिल है।

घटनाओं का क्रम निस्संदेह यह दर्शाता है कि दांडिक कार्यवाही दुर्भावनापूर्ण रूप से अपीलकर्ताओं पर बदला लेने के गुप्त उद्देश्य और व्यक्तिगत द्वेष के कारण उन्हें परेशान करने के उद्देश्य से शुरू की गई है। इसका स्पष्ट उद्देश्य लोक सेवकों को उनके कर्तव्यों का निर्वहन करने से रोकना था। विद्वान एसडीजेएम ने शिकायतकर्ता के ऐसा करने के लिए कहने मात्र से आपराधिक कानून को लागू कर दिया है। उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग करने से इनकार करके अपने कर्तव्य का लगभग परित्याग कर दिया, जबकि इस मामले में अधीनस्थ न्यायालय द्वारा प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उसके हस्तक्षेप की आवश्यकता थी। न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए हमारे हस्तक्षेप की आवश्यकता का स्पष्ट वाद बनता है।

17. उपर्युक्त सभी कारणों से, उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है और 2003 का शिकायत वाद संख्या 916 (सी) से उत्पन्न दांडिक कार्यवाही अभिखंडित की जाती है। तदनुसार, अपील स्वीकार की जाती है।

आर. पी.

अपील स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमन्य होगा।